कटने से बचाते आये हैं। भारत के लौकिक साहित्य एवं कला में भी धार्मिकता पर आधारित समाज के सारभूत मूल्यों में धर्म सबसे महत्त्वपूर्ण है। पर्व, त्यौहार, अनुष्ठान में वृक्ष, लताएँ, पत्र, पुष्प, पशु–पक्षी, कीट–पतंग, शंख–चक्र, स्वास्तिक के साथ–साथ मानवाकृतियों के अपने निर्धारित एवं गहन आशय होते हैं, जो अपने अंचल का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रकृति कलामयी है और इसीलिए वह कलाकार के लिये एक संचित सौन्दर्य–कोष है। यही नहीं, प्रकृति कलाकार की गुरु भी है, जो उसे आजन्म कला का पाठ पढ़ाती रहती है। वह अपनी एक–एक कलाकृति के अंग–प्रत्यंगों की रचना सोच–समझकर भावमय तथा अभूतपूर्व ढंग से करती है, क्योंकि वह स्वयं एक कलाकार है। उसकी ये सूक्ष्म रूपाकृतियाँ हमें प्रेरित करती हैं कि हम भी अपनी कल्पना से कलापूर्ण सूक्ष्म रूपाकृतियों तथा भावमय चित्रों का निर्माण करें; परन्तु यदि चित्रकार प्रकृति की नकल करे या उसका प्रतिस्पर्धी बने तो समस्या जटिल होगी। चित्रकला तो मनुष्य की भावाभिव्यक्ति का सरल माध्यम है। यदि चित्रकार यह चाहता है कि उसकी कला की भाषा को समाज समझ कर उसका आनन्द ले सके तो उसे सरल बनाना पड़ेगा, शायद उसी भाँति जैसा अति प्राचीन कला का स्वरूप था।[6] यदि कला चित्रकार के विचारों तथा भावों की वाहिका है, तो प्रकृति उसकी प्रेरणा, उसकी सृजनात्मकता का आधार है। प्रकृति का रचना–सौष्ठव देखकर चकित होकर अंततः कहना पड़ता है कि प्रकृति सब शास्त्रों की अधिष्ठात्री है।

—0—

– सहायक प्राध्यापक, चित्रकला
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, **भोपाल** (म.प्र.)

संदर्भ

1. गैरोला, वाचस्पति, भारतीय संस्कृति और कला, पृ. 91;97;99
2. पाण्डेय, अंजलि, मध्यप्रदेश में ताम्रपाषाणयुगीन मृद्भाण्ड चित्रकला, अप्रकाशित शोध–ग्रंथ (संक्षेपिका)
3. गैरोला, वाचस्पति, वही, पृ. 222, 223
4. वाजपेयी, उदयन, रोजमर्रा का जीवन और कलाओं की भूमिका, दैनिक भास्कर, भोपाल, 10 जून, 2005
5. मुकर्जी, राधाकमल, द फ्लावरिंग ऑफ इण्डियन आर्ट, पृ. 228
6. शुक्ल, रामचन्द्र, कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, पृ. 112

—0—

हिन्दी साहित्य और रीतिकालीन समाज

(नारी स्थिति के विशेष संदर्भ में)

– डॉ. ए.के. पाण्डेय

इतिहासकारो ने प्रायः हिन्दी साहित्यिक ग्रंथों पर उनका विश्वास नहीं किया जितना शिलालेखों, ताम्रलेखों, सिक्कों या अन्य प्रकार के उपलब्ध विश्वसनीय तथ्यों पर। कारण है कि इतिहास तथ्यों और प्रमाणों पर आधारित रहता है, जबकि साहित्यिक ग्रंथों के लिये यह अनिवार्य शर्त नहीं है; तथापि हिन्दी साहित्यिक ग्रंथों में वर्णित घटनाओं और तथ्यों को दूसरे प्रामाणिक साधनों की तर्कपूर्ण कसौटी पर कसकर वास्तविक तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। हिन्दी साहित्य के बहुत से ग्रंथ उपलब्ध है जिनमें प्रचुर ऐतिहासिक यथार्थ गर्भित है। हांलाकि इन ग्रंथों में घटनाओं की क्रमबद्धता नहीं है, तिथिक्रम का अभाव है, चारण कवियों एवं राजकवियों द्वारा आश्रयदाताओं के गुणगान चढ़ा–चढ़ा कर लिखे गये हैं। लेकिन एक खोजी इतिहासकार इन साहित्यिक ग्रंथों में वर्णित प्रासंगिक तथ्यों को निकाल कर ऐतिहासिक चित्र खड़ा कर सकता है।

हिन्दी साहित्य के बहुत से ग्रंथों में प्रचुर ऐतिहासिक यथार्थता गर्भित है, जैसे नल्लसिंह कृत विजयपाल रासो, खुम्माण कृत खुम्माणरासो, नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, दयाराम का राणा रासो, कुंभकर्ण का रतन रासो, विद्यापति की कीर्तिलता व कीर्तिपताका, रसखान की सुजात रसखान, सूदन की सुजानचरित, ग्वाल का हम्मीरहट्ठ, लालकवि का छत्रप्रकाश, केशवदास की बीरसिंहदेवचरित, रतन बावरी, जहाँगीर जसचंद्रिका, भूषण के शिवराजभूषण, छत्रसालदशक इत्यादि। श्रीधर ने जङ्गनामा में जहौदशाह तथा फर्रूखशियर के युद्ध का वर्णन किया है। लाल के छत्रप्रकाश में बुन्देलों की उत्पत्ति, चंपतराय की विजयगाथा, उनके जीवन के अन्तिम दिनों में राज्य का मुगलों के हाथों में लिया जाना, छत्रसाल का अपनी छोटी सेना द्वारा मुगलों के नाक में दम करना आदि का विस्तृत विवरण है। सूदन के सुजानचरित ग्रंथ में भरतपुर के महाराज बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह के पराक्रमपूर्ण जीवन का वृत्तान्त लिखा है। केशवजी ने वंश वर्णन के साथ कुछ राजाओं विशेषतः मधुकरशाह, रामशाह इत्यादि का मुगल सम्राटों से संबंधों का वर्णन किया है। ऐतिहासिक हिन्दी साहित्य में शिवाजी के कीर्तिमान में

लिखा गया भूषण का शिवराजभूषण विशेष प्रसिद्ध है। इसमें शाहजहाँ के पुत्रों का युद्ध और दारा, शुजा तथा मुराद की हार, अफजल की शिवाजी द्वारा हत्या, पन्हाला दुर्ग विजय, पूना में शाइस्ताखाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, शिवाजी का दिल्ली जाना तथा आगरे से वापस आना आदि अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है।

सामाजिक स्थिति

राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों एवं तथ्यों की तरह सामाजिक स्थिति का अध्ययन ही हिन्दी साहित्यिक ग्रंथों द्वारा किया जा सकता है। रीतिकालीन भारतीय समाज अधःपतन की ओर उन्मुख था। समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच बहुत बड़ी खाई बन गयी थी। एक ओर जहाँ राजा एवं सामन्त वर्ग ऐश्वर्य एवं भोग विलास में डूबे हुए थे, वहीं सामान्य वर्ग दरिद्रता एवं बेहाली की स्थिति में जीवन–यापन कर रहा था। इन तथ्यों का स्पष्ट संकेत हिन्दी ग्रंथों में उपलब्ध हैं। राजाओं की हित की बात करने वाला शत्रु होता था और जो चाटुकारी करता था, वह मंत्री तथा मित्र का स्थान प्राप्त करता था –

जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।[1]
सुख बताई जानिये, संतत मंत्री मित्र।।

अनेक हिन्दी साहित्यिक ग्रंथों में देश की इस दुर्दशा एवं राजवर्ग के भोग एवं विलासिता का वर्णन है –

पान विलास उदित आतुरी। पर दारा गमनै चातुरी।[2]

जहाँ राजवर्ग भोग–विलासिता में मग्न था, वहीं निम्न एवं दरिद्र कृषक वर्ग अपने पेट की भूख को शान्त करने के लिये बेटे–बेटियों को बेचने के लिये मजबूर था। अकबर के समय को आर्थिक उन्नति का काल माना जाता है; लेकिन तुलसीदासजी ने सामान्य वर्ग का चित्रण निम्न पंक्तियों में किया है –

किसवी किसान–कुल, बनिक, भिखारी, भाट[3]
चाकर, चपल नट, चोर, चार चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि।
अटक गहन वन अहन अखेट की।
ऊँचे–नीचे करम–धरम–अधरम करि,

पेट ही को पचत, बेचत बेटा–बेटी की।
तुलसी बुझाई एक राम–घनश्याम ही ते।
आगि बडवाग ते बड़ी है आगि पेट की।।22।।

निम्न पंक्तियों द्वारा भी तत्कालीन सामान्य वर्ग के आर्थिक दुर्दशा की स्पष्ट झलक मिलती है –

खेती न किसान की, भिखारी को न भीख भली।[4]
बनिज को न बनिज न चाकर को चाकरी
जीविकाविहीन लोग सीधमान सोच बस।
कहै एक एकन से कहाँ जाई कहा करी।

हिन्दी साहित्य द्वारा यह स्पष्ट पता चलता है कि मध्यकालीन उच्च भारतीय समाज में एवं निम्न वर्गों की आर्थिक स्थिति के बीच एक लम्बी खाई थी।

वर्ण एवं जाति व्यवस्था

इस काल में वर्ण–व्यवस्था भी भिन्न–भिन्न हो रही थी तथा भिन्न–भिन्न वर्ण अपने कर्तव्य–पालन की ओर से विमुख हो रहे थे। विज्ञानगीता में केशवजी ने लिखा है कि तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग वेदों को बेचते और म्लेच्छों की सेवा करते थे, क्षत्रियों ने प्रजा की रक्षा करना छोड़ दिया था और बिना अपराध के ही ब्राह्मणों की वृत्ति का हरण करने में संकोच न करते थे। वैश्यों ने क्रय–विक्रय छोड़कर क्षत्रियों के समान अस्त्र–शस्त्र धारण करना प्रारंभ कर दिया था। शूद्र लोग मूर्ति के स्थान पर पत्थर रख कर उसकी पूजा करते, धन आहरण करते और राज्य की ओर से निडर हो रहे थे। इस प्रकार यह स्पष्ट झलक मिलती है कि प्राचीन वर्ण–व्यवस्था पतनोन्मुख थी –

ब्राह्मण बेचत वेदनि को म्लेच्छ महीप की सेव करै जू।[5]
क्षत्रिय छांड़त है परजा अपराध बिना द्विज वृत्ति हरें जू।
छौड़ि दयो क्रय–विक्रय वैश्यानि क्षत्रिन यों हथियार धरै जू।
पूजत शूद्र शिला धनु चौरति चित्र में राजनि को न डरै जू।।

तुलसीदास ने ब्राह्मणों का चरित्र–चित्रण करते हुए लिखा है –

विप्र निरक्षर लोलपु कामी। निराधर षठ वृषली स्वामी।[6]

रीतिकालीन साहित्य में अधिकांशतः राजस्थान या बुन्देलखण्ड के राजपूत राजवंशों का वर्णन मिलता है। भूषण ने कछवाहे, पौरच, कूरम, कबंध (राठौर), हाड़ा, तंबूर (तोमर) तथा बंघला का वर्णन किया है। पद्माकर ने अपने प्रशस्ति काव्य में सुलंकी, हाड़ा, राठौर, सिसौदिया, सेंगर, चंदेल, परिहार, बुन्देल, डटौरिया, कुरचली, नादर, पिपरिहा, बघेल आदि का वर्णन किया है।

रीतिकालीन कोश–ग्रंथों में प्रमुख जातियों के व्यवसाय और उनकी जातिगत विशेषताओं का कुछ विवरण मिलता है। 'दम्पति वाक्य विलास' में वर्णित जातियों की सूची इस प्रकार है – गुसाई, भट्ट,जोगी, संजोगी, खोजा, खवास, मोदी, तंबोली, सुनार, दरजी, रंगरेज, माजी, कूंजरे, भटियारे, बढ़ई, तेली, नाई, कुम्हकार, धोबी, मलाह, मेहतर, भंगी, ग्वाला इत्यादि। उपरोक्त जातियों का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस समय तक जाति का आधार व्यवसाय हो गया था। पिछड़ी हुई जातियों में धोबी, ओड़ और कुम्हार का उल्लेख बिहारी ने किया है –

चल्यौ जाइ हयाँ को करे हाथिनु के व्यापार।[7]
नहिं जानतु, इहि पुर बसै धोबी, ओड़, कुम्हार।।

नारी की स्थिति

नारी की स्थिति के विश्लेषण के बिना किसी समाज का अध्ययन पूर्ण नहीं हो सकता। उच्चवर्गीय राजपूत नारियों एवं सामान्य वर्ग की नारियों की स्थिति में पर्याप्त अन्तर था। राजाओं की निरंकुशता तथा उससे व्यथित नारी का आक्रोश इस काल के साहित्य में देखने को मिलता है –

तात निरंकुश भूप जन, को हिय किय विश्वास।[8]
पुनि परितंत्र बनाइ तुम, मैं किय चलु उन पास।।

राजपूतों से संबंधित साहित्य में नारी के संबंध में अनेक उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। वीर पतियों की कामना ही उनकी सबसे बड़ी कामना थी जो उन्मत्त हाथियों को भी वश में कर सके–

आयहीं जम्महि वि गौरी दिज्जस कन्तु।[9]
तय मत्रहं चत्रँक संह अम्मि डह हसन्तु।।

रीतिकालीन प्रबंध काव्यों में राजपूत नारियों की वीरगाथा मिलती है। हम्मीर की राणी आशामती, वीर–वधु और वीर माता के रूप में अपने पति और पुत्रों को युद्धोत्सव में भेजने का आदेश देती है। लेकिन एक क्षण वह आया जब हम्मीर चिंतातुर होकर संधि के आतुर हो गया। तब आशामती ने अपने पति को इस प्रकार सावधान किया –

बिलखाई वदन रानी कहै, द्वादस वर्ष जु तुम लरे।[10]
विपरति बुद्धि कौन दई, हीन वचन मुख निक्करे।।

राजपूत राजाओं के पराजित होने और मारे जाने के पश्चात् अपने स्त्रीधर्म की रक्षा के लिये राजपूत रानियाँ जौहर कर लेती थी। सती प्रथा का स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है –

नागमती पदुमावति रानी। दुवौ महासन सती बखानी।[11]
दुवौ आइ चढ़ि खाट बईठीं। और सिवलोक परा तिन्ह डीठी।।

साधारण नारियों की स्थिति उच्चवर्गीय राजपूत नारियों से भिन्न थी। निम्नवर्गीय नारी की दयनीय दशा थी। सामान्य नारी वर्ग में सती प्रथा कम थी। पर्दा प्रथा भी उच्चवर्गीय राजपूत एवं मुस्लिम महिलाओं की तुलना में अल्प था। वेश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा प्रचलित थी। इस काल में नारी की पवित्रता के प्रति सेवा को विशेष महत्त्व दिया जाता था। किसी भी दशा में पति को पत्नी द्वारा छोड़ा जाना अनुचित माना गया। तुलसी ने सतीत्व के आदर्श को ध्यान में रख कर नारी को गौरवपूर्ण स्थान दिया है –

सहज अपावन नारी पति सेवत सुभगति लहई।[12]

तुलसी के अनुसार सती का आदर्श यह है कि वह अपने पतित पति को भी देवता माने–

वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
एकै धर्म एक व्रत नियमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा।।

तुलसीदास की भाँति केशव ने भी अयोग्य, रुग्ण और हीन पति को भी न त्यागने का उपदेश दिया है –

कलही कोढ़ी भीरू ज्वारी विभिचारी।[13]
अधम अभागो कुटिल कुपित पति तजै न नारी।।

रीति काल में भक्ति–भावना तथा साधना के क्षेत्र में नारी को बाधक माना गया। गोरखनाथ ने नारी को बाघिनी और पुरुष के सार भाग को शोषण करने वाली बतलाया है –

दिवसै बाघणी मण मौहें, राति सरोवरि सौवे।[14]
जारिण बूझिरे यूरिष लोया चरि–धरि बाघणी पोवे।।

नारी को ज्ञान–प्राप्ति तथा संसार–सागर पार करने के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक माना गया जिसकी स्पष्ट पुष्टि बिहारी के इस दोहे से होती है -

या भव पारावार कौ उलंघि पार को जाई।[15]
तिय छवि छायाग्राहिणी, गहै बीच ही आई।।

भक्तों एवं साधकों की उपरोक्त विचारधाराओं के विपरीत अन्य जनसामान्य के बीच जीवन की संचालिका शक्ति काम में ही सन्निहित थी। बहन और पुत्री जैसे संबंध भी कामतिरेक में लुप्त हो गये थे। तुलसी ने लिखा है :–

कलिकाल विहाल किये मनुजा।[16]
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।।

भिखारीदास ने पतिव्रताओं की संभावना तो इस युग में मानी है, पर एक पत्नीव्रत इस युग में अप्राप्य हो गये थे –

नारी पतिव्रत है बहुतै पतिन व्रत नायक और न कोऊ।

इस समय बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। सपत्नी का विरोध ईर्ष्याजन्य होता है। पद्मा की नायिका को प्रीतम का जब पूर्ण प्रेम प्राप्त होता है तो सौतों के हृदय में पीड़ा होने लगती है–

हौ जाती बीसहु बिसे तो बस भये गुपाल।[17]
सौतिन को अरू सखिन कौ देत देखियतु साल।।

इसी प्रकार बिहारी के निम्न दोहे से यह स्पष्ट है कि सौतों के प्रेम के कारण नायिका को प्रेम नहीं मिलता है। एक दिन उसे अपने प्रिय की मसली हुई माला ही मिल गयी जिसे पाकर वह फूली नहीं समायी –

तिय सौतिनु देखत दई अपने हित तै लाल।[18]
फिरति सवनु में डह डहीं उटै मरगजी माल।।

रीतिकालीन में सौत संबंध के साथ–साथ देवर–भाभी संबंध को लोकस्वीकृत रूप भी मान्य रहा। भाभी की देवर के प्रति आसक्ति मतिराम के निम्न दोहे में स्पष्ट है –

है यह गाँव गुलाब बस, पर ठाकुर के गेह।[19]
चलौ न आवति बास है, जो देवर की देह।।

रीतिकालीन साहित्य द्वारा यह भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि सास और ननद वधू के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण नहीं रखती थी। घनानंद की नायिका इसी त्रास के कारण खुलकर सांस भी नहीं ले सकती –

सास ननद की त्रासनि मरि न सकौ जिय कलमलाय।[20]

अतः हिन्दी साहित्यिक ग्रंथों के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय स्थिति थी। सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बहु विवाह, वेश्यावृत्ति, देवदासी इत्यादि कुप्रथाएँ मध्यकालीन भारतीय समाज में प्रचलित थीं। नारी वर्ग में सुविधाप्राप्त और सुविधाविहीन वर्गों की स्थिति में पर्याप्त अंतर था। अधिकांश बुराइयाँ उच्च वर्गों में व्याप्त थी।

वेशभूषा

मध्य काल में मुस्लिम संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव सामंती वेशभूषा और अलंकार प्रसाधन पर देखा जा सकता है। साहित्यिक स्रोतों से पुरुषों के वस्त्रों पर विशेष प्रकार नहीं पडता। भूषण ने तिलक नामक एक कुर्ते का जिक्र किया है जो ढीला होता था और घुटनों तक आता था। इसी प्रकार भूषण ने सुथनिया या पायजामे का भी उल्लेख किया है।

स्त्रियों के वक्षोजों के वर्णन में रीतिकालीन कवियों ने इन वस्त्रों का उल्लेख किया है– कंचुकी, तनिया, अंगी, चोली। ये विविध रंगों की भी होती थी। बिहारी के एक दोहे के अनुसार तंब अंगिया यौवन के उभार की ठीक–ठीक व्यंजना करती है –

दूरत न कुच विच कंचुकी चुपटी सादी सेत।[21]
कवि अंकनु के अरथ लौ प्रकट दिखाई देत।।

रीतिकालीन कवियों ने साड़ियों और विशेषतः जरतारी साड़ी का वर्णन किया है, जो उच्चवर्गीय नारियाँ पहनती थीं। साड़ी की अपेक्षा लहंगा और घाघरा ही अधिक प्रचलित था। मुस्लिम स्त्रियों के अलावा हिन्दू स्त्रियाँ भी घाघरा ही पहनती थी जिसका प्रमाण साहित्य के साथ मुगलकालीन चित्रकला में भी दृष्टिगोचर होता है। कवियों ने विविध प्रकार के लहंगों का चित्रण किया है; जैसे अतरौटा, लहंगा, घाघरा, बूटेदार, घाघरी वगैरह। साथ ही ओढ़नियों

का भी उल्लेख मिलता है जिसे पट, घूंघट, झीनी, पीत पट, श्वेत साड़ी, टूनर आदि नामों से जाना जाता था। भारतीय संस्कृति में सुहाग के प्रतीक बिन्दी को बिहारी ने सौन्दर्यवर्द्धक के रूप में देता है –

कहत सबै बेंदी दिये आंकु दस गुनौ होत।[15]
तिय लिलार बेंदी दिये अगिनित बढ़त उदोत।।

मनोरंजन

रीति काल में मनोरंजन के साधनों में ताश, शतरंज, चौसर आदि सभी वर्गों में प्रचलित थे; जबकि मृगया, पतंगबाजी, चौगान आदि विशिष्ट वर्ग के लिये ही साध्य थे। इसके अलावा पशु युद्ध, नृत्य–गान, लट्टू मारना, नट का खेल, मल्ल युद्ध आदि मनोरंजन के साधन थे। मृगया का आखेट नाम से उल्लेख छत्रसाल प्रकाश[23] में मिलता है। सुजान चरित का नायक भी आखेटप्रिय है। तत्कालीन चित्रकला में आखेट के चित्र भी उल्लेखित है।

चौगान का विस्तृत रूप से वर्णन केशव ने रामचंद्रिका और वीरसिंहदेव चरित में किया है तथा विभिन्न जातियों के घोड़ों में महिष, मेष, मृग, वृषभ तथा गजों के युद्धों का उल्लेख मिलता है –

महिष, मेष, वृषभ, कहुँ, मल्ल गजराज।[24]
लरत कहूँ पायम सुभट, कहूँ नर्तन नटराज।।

आचार्य केशवदास ने रामचन्द्रिका में 'जुआ न खेलिए कहूँ जुबान वेद रक्षिमै' कहा है।[25] घनानंद ने भी दीवाली के अवसर पर जुआ खेलने की परम्परा की पुष्टि की है –

आई है दिवाली चीते काजनि दिवारी प्यारी।[26]
खेलै मिलि जुवा पेंज दाव आवही।।

कुल मिला कर यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन हिन्दी साहित्य ने तत्कालीन भारतीय सामाजिक इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है।

—0—

– सहायक प्राध्यापक, इतिहास,
शास. दू.ब. महिला स्नातकोत्तर स्वशासी,
महाविद्यालय, **रायपुर** (छत्तीसगढ़)

संदर्भ

1. केशवदास, रामचन्द्रिका, (उत्तरार्ध), पृ. 50
2. उक्त, पृ. 49
3. तुलसीदास, कवितावली, आत्मकथ्य 2 से
4. उक्त, पृ. 97
5. केशवदास, विज्ञान गीता, पृ. 33
6. तुलसीदास, रामचरित मानस, उत्तराखण्ड, दो. 100 पंक्ति 8
7. बिहारी, दोहा, 439
8. मधुसूदन दत्त, रामाश्वमेघ
9. मध्यकालीन हिन्दी कवयत्रियाँ, पृ. 26
10. हम्मीर रासो
11. जायसी, पद्मावत (सम्पादक डॉ. श्रीनिवास शर्मा, पृ. 597)
12. तुलसीदास, अरण्य काण्ड, 5
13. केशव, रामचन्द्रिका (9 / 16)
14. गोरखबानी, पृ. 137–138
15. बिहारी, दोहा, 433
16. तुलसीदास, रामचरित मानस (दो. 102 पंक्ति 5)
17. पद्मावत, छन्द, 57
18. बिहारी, छन्द, 122
19. मतिराम, दोहा 318
20. घनानन्द, छन्द 66
21. बिहारी, दोहा 188
22. उक्त, दोहा 327
23. छत्रसाल प्रकाश, सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दर दास, पृ. 46
24. केशवदास, रामचन्द्रिका, 2 / 3
25. उक्त, 13 / 36
26. घनानन्द, सुजानहित, छन्द 46

—0—